

दि कर्मािक पोस्ट

Email- thekaarmiicpost@gmail.com

Global
School Of
Excellence,
Obedullaganj

वर्ष : 12, अंक : 38-39

(प्रति बुधवार),

इन्दौर, 30 सितंबर 2026 से 6 अक्टूबर 2026

पेज : 8

कीमत : 3 रुपये

हिमालय की बर्फ और ग्लेशियरों तक पहुंचा प्लास्टिक, जल सुरक्षा व पर्यावरण पर बढ़ा खतरा

शिमला। हिमालय को दुनिया की सबसे स्वच्छ और प्राकृतिक पर्वत श्रृंखलाओं में गिना जाता है। लेकिन अब यहां भी प्रदूषण का एक नया खतरा तेजी से बढ़ रहा है। एक नए वैज्ञानिक अध्ययन में सामने आया है कि हिंदू कुश हिमालय क्षेत्र की बर्फ, ग्लेशियर, नदियों, मिट्टी और आसपास के पर्यावरण में माइक्रोप्लास्टिक पहुंच चुका है। माइक्रोप्लास्टिक प्लास्टिक के पांच मिलीमीटर से छोटे कण होते हैं।

हिंदू कुश हिमालय को 'एशिया का वाटर टावर' कहा जाता है, क्योंकि यहां से निकलने वाली नदियां एशिया के करोड़ों लोगों के लिए पानी का प्रमुख स्रोत हैं। इस क्षेत्र से गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, मेकांग, यांग्त्जे और येलो नदी जैसी बड़ी नदियां निकलती हैं। इसलिए हिमालय में बढ़ता प्रदूषण केवल पहाड़ों की समस्या नहीं है, बल्कि इसका असर मैदानी इलाकों तक पहुंच सकता है। शोधकर्ताओं ने इस विषय पर प्रकाशित 562 अध्ययनों की समीक्षा की है। इस काम में भारत, जापान, ताइवान और हिमालयी क्षेत्र से जुड़े कई शोध संस्थानों के वैज्ञानिक शामिल रहे। अध्ययन में माइक्रोप्लास्टिक के स्रोत, उसके फैलाव और पर्यावरण पर उसके होने वाले प्रभावों को एक साथ समझने की कोशिश की गई है। एनवायरनमेंटल सस्टेनेबिलिटी नामक पत्रिका में प्रकाशित शोध में बताया गया है कि माइक्रोप्लास्टिक केवल शहरों या समुद्रों तक सीमित नहीं है। यह ऊंचे पर्वतीय इलाकों और ग्लेशियरों तक भी पहुंच रहा है। वैज्ञानिकों ने इसके लिए स्थानीय गतिविधियों के साथ-साथ हवा और पानी के जरिए होने वाले दूर-दराज के प्रदूषण को भी जिम्मेदार बताया है। हिमालय में बढ़ता पर्यटन माइक्रोप्लास्टिक का एक महत्वपूर्ण स्थानीय स्रोत बन रहा है। ट्रेकिंग, पर्वतारोहण, धार्मिक यात्राओं और पर्यटक गतिविधियों के दौरान बड़ी मात्रा में प्लास्टिक कचरा पैदा होता है। यदि इस कचरे का सही तरीके से निपटारा नहीं किया जाए तो वह टूटकर छोटे-छोटे कणों में बदल सकता है। कई ऊंचाई वाले क्षेत्रों में कैंप और बस्तियों के आसपास प्लास्टिक प्रदूषण अधिक पाया गया है। इसके अलावा खेती में इस्तेमाल होने वाली प्लास्टिक शीट, सिंचाई की पाइप और खाद की प्लास्टिक पैकिंग भी समय के साथ टूटकर मिट्टी और पानी में पहुंच सकती है। माइक्रोप्लास्टिक के हिमालय तक पहुंचने का एक दूसरा रास्ता हवा है। मैदानी इलाकों के शहरों और औद्योगिक क्षेत्रों से निकलने वाले हल्के प्लास्टिक कण तेज हवाओं के साथ लंबी दूरी तय कर सकते हैं। मानसूनी हवाएं और पश्चिमी हवाएं भी इन कणों को ऊंचे पर्वतीय क्षेत्रों तक पहुंचा सकती हैं। इसका मतलब है कि किसी दूर-दराज



के ग्लेशियर में मिला माइक्रोप्लास्टिक जरूरी नहीं कि वहीं पैदा हुआ हो। वह सैकड़ों या हजारों किलोमीटर दूर किसी इलाके से हवा के साथ वहां पहुंच सकता है। बर्फ और ग्लेशियरों पर जमा होने वाले माइक्रोप्लास्टिक को लेकर वैज्ञानिकों की चिंता बढ़ रही है। जब ये कण बर्फ की सतह पर जमा होते हैं तो वे सतह के रंग और सूर्य की रोशनी को परावर्तित करने की क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। इससे बर्फ अधिक गर्मी सोख सकती है। हालांकि माइक्रोप्लास्टिक का ग्लेशियर पिघलने में कितना योगदान है, इसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए अभी और शोध की जरूरत है। ग्लेशियरों के पिघलने में तापमान वृद्धि और ब्लैक कार्बन जैसे अन्य कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्लेशियर और बर्फ पिघलने के साथ जमा माइक्रोप्लास्टिक नदियों में पहुंच सकता है। इन कणों को छोटे जलीय जीव और मछलियां भोजन समझकर निगल सकती हैं। इससे उनके पाचन तंत्र और स्वास्थ्य पर असर पड़ने की आशंका है। मिट्टी में पहुंचने वाला माइक्रोप्लास्टिक भी उसकी संरचना, पानी रोकने की क्षमता और पोषक तत्वों के संतुलन को बदल सकता है। इसका असर खेती और स्थानीय जैव विविधता पर पड़ सकता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि इस क्षेत्र में अभी काफी जानकारी जुटाना बाकी है। अलग-अलग अध्ययनों में नमूने लेने और माइक्रोप्लास्टिक की जांच करने के तरीके अलग रहे हैं। इसलिए विभिन्न स्थानों के आंकड़ों की सीधी तुलना करना मुश्किल है। वैज्ञानिकों का मानना है कि हिमालय में प्लास्टिक प्रदूषण को रोकने के लिए कचरा प्रबंधन मजबूत करना, पर्यटन क्षेत्रों में प्लास्टिक का इस्तेमाल कम करना, कृषि में प्लास्टिक के बेहतर विकल्प अपनाना और अलग-अलग देशों के बीच सहयोग बढ़ाना जरूरी है। हिमालय केवल बर्फ से ढके पहाड़ों का समूह नहीं है। यह एशिया की बड़ी नदियों और करोड़ों लोगों के जीवन का आधार है। इसलिए यहां बढ़ता माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण इस बात की चेतावनी है कि दुनिया के सबसे दूरस्थ प्राकृतिक क्षेत्र भी मानव गतिविधियों से अछूते नहीं रहे हैं।

52 वर्षों में मध्य और उत्तर-पश्चिम भारत में हर दशक 20 से 40 फीसदी बढ़ा भीषण गर्मी का दायरा



भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा किए अध्ययन से पता चला है कि 1980 के दशक में जहां गर्मी के कुछ छिटपुट हॉटस्पॉट थे, वहीं 2010 के दशक तक ये बड़े और लगातार जुड़े इलाकों में बदल गए; स्थिति यह है कि तटीय क्षेत्रों से निकलकर खतरनाक उमस भरी गर्मी अब देश के अंदरूनी हिस्सों तक पहुंच रही है भारत में गर्मी का नक्शा तेजी से बदल रहा है। 1971 से 2022 के बीच के 52 वर्षों के मौसम संबंधी आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित एक नए अध्ययन में सामने आया है कि मध्य और उत्तर-पश्चिम भारत में भीषण गर्मी की चपेट में आने वाला भू-भाग हर दशक 20 से 40 फीसदी तक बढ़ा है। 1980 के दशक में जहां गर्मी के हॉटस्पॉट छोटे और अलग-अलग इलाकों तक सीमित थे, वहीं 2010 के दशक तक वे बड़े और आपस में जुड़े 'हीट स्ट्रेस जोन' में बदल गए। अध्ययन में यह भी सामने आया कि खतरनाक उमस भरी गर्मी, जिसमें अधिक तापमान और नमी के कारण शरीर के लिए खुद को ठंडा करना मुश्किल हो जाता है, अब तटीय क्षेत्रों से आगे बढ़कर देश के अंदरूनी हिस्सों तक पहुंच रही है। 2021 तक इसके प्रभाव वाले क्षेत्र में करीब 10 फीसदी की बढ़ोतरी दर्ज की गई। उत्तर-पश्चिम भारत में गर्मी और लू का दबाव सबसे अधिक बढ़ा है, जबकि दक्षिण भारत में सूखे का खतरा गहरा रहा है। ओडिशा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के कुछ वर्षों में 40 फीसदी से अधिक क्षेत्र में सूखे की स्थिति दर्ज हुई। दूसरी ओर, पूर्वोत्तर में एक साथ अत्यधिक बारिश और सूखे की स्थितियां बढ़ी हैं।

शोधकर्ताओं का कहना है कि बदलते जलवायु जोखिमों से निपटने के लिए पूरे देश के लिए एक जैसी रणनीति के बजाय क्षेत्र विशेष की जरूरतों के अनुसार हीट एक्शन, जल-सुरक्षा, सूखा प्रबंधन और बाढ़ नियंत्रण की तैयारी जरूरी है। कभी गर्मियों में पेड़ों छांव और शाम की ठंडी हवा सुकून देती थी, लेकिन अब हालात बदल चुके हैं। भारत में गर्मी और उमस अब केवल तापमान बढ़ने की कहानी नहीं रह गई। देश के

बड़े हिस्से में भीषण गर्मी और सूखे का दायरा लगातार बढ़ रहा है। चिंता की बात यह है कि पिछले 52 वर्षों (1971-2022) के मौसम संबंधी आंकड़ों के व्यापक विश्लेषण से पता चला है कि मध्य और उत्तर-पश्चिम भारत में भीषण गर्मी की चपेट में आने वाला भू-भाग हर दशक 20 से 40 फीसदी तक बढ़ा है।

रिपोर्ट दर्शाती है कि 1980 के दशक में भीषण गर्मी और सूखे से जूझते जो इलाके कुछ अलग-थलग और गिने-चुने हिस्सों तक सीमित थे, वे 2010 के दशक तक आते-आते आपस में जुड़े बड़े क्षेत्रों %हीट स्ट्रेस जोन% में बदल गए। यानी गर्मी अब कुछ गिने-चुने स्थानों की समस्या नहीं रही, बल्कि कई राज्यों और बड़े भौगोलिक क्षेत्रों में एक साथ असर डाल रही है। यह अध्ययन 1971 से 2022 के बीच भारत के मौसम में आए बदलावों पर आधारित है। इसके नतीजे प्रतिष्ठित इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्लाइमेटोलॉजी में प्रकाशित हुए हैं। इस अध्ययन में भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी), पुणे, एट्रिया विश्वविद्यालय और नेशनल सेंटर फॉर मीडियम रेंज वेदर फोरकास्टिंग से जुड़े वैज्ञानिक शामिल थे।

अपने इस अध्ययन में शोधकर्ताओं ने दिन के समय भीषण गर्मी, उमस भरी चिपचिपाती गर्मी, लू की गंभीरता और सूखे समेत सात अलग-अलग जलवायु खतरों को ध्यान में रखते हुए क्लाइमेट एक्सट्रीम्स इंडेक्स (सीईआई) तैयार किया है।

इसके लिए आईएमडी के पिछले पांच दशकों के मौसम संबंधी आंकड़ों की मदद ली गई है। साथ ही तापमान में आ रहे बदलावों की प्रवृत्ति को मैन-

केन्डल परीक्षण के जरिए परखा गया। अध्ययन से जुड़े शोधकर्ता और एट्रिया यूनिवर्सिटी में वैज्ञानिक तथा पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के पूर्व सचिव डॉक्टर एम राजीवन के मुताबिक, पांच दशकों में सबसे बड़ा बदलाव सिर्फ तापमान बढ़ना नहीं है, बल्कि गर्मी और सूखे की चरम स्थितियों का लगातार बड़े भू-भाग में फैलना है।

उनके अनुसार, ये स्थितियां पहले कुछ सीमित इलाकों में दिखाई देती थीं, लेकिन अब बड़े और आपस में एक दूसरे से जुड़े क्षेत्रों में फैल गई हैं। इससे जलवायु जोखिम का पैमाना बदल गया है और भविष्य की तैयारी के लिए नए तरीके अपनाने की जरूरत है। अध्ययन में पाया गया कि जलवायु की चरम स्थितियों का असर देश के हर हिस्से में एक जैसा नहीं है। उत्तर-पश्चिम भारत में दिन के तापमान, उमस भरी गर्मी और लू की तीव्रता में सबसे तेज बढ़ोतरी दर्ज की गई। शोधकर्ताओं के अनुसार, इस क्षेत्र में सूखे हालात, मिट्टी में घटती नमी और जमीन का तेजी से गर्म होना इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं। इसका मतलब है कि इस क्षेत्र में गर्मी सिर्फ थर्मामीटर का बढ़ता पारा नहीं है। सूखी जमीन और कम होती नमी के बीच बढ़ता तापमान लोगों, कृषि और पानी की उपलब्धता पर एक साथ दबाव बढ़ा सकता है। इसी तरह 45 वर्षों के वैश्विक जलवायु आंकड़ों के विश्लेषण में सामने आया है कि दुनिया के करीब हिस्से में चरम गर्मी का मौसम बढ़ा है। वहीं उत्तर-पश्चिमी भारत में मौसम से पहले ही गर्मियां दस्तक देने लगी हैं। यह बदलाव महज मौसम के कैलेंडर में फेरबदल नहीं है। सामान्य गर्मी शुरू होने से पहले पड़ने वाली असामान्य गर्मी के दौरान शरीर को तापमान के अनुरूप ढलने का पर्याप्त समय नहीं मिलता, जिससे हीट स्ट्रेस और स्वास्थ्य जोखिम बढ़ सकते हैं। अध्ययन में एक और चिंताजनक बदलाव सामने आया है—खतरनाक उमस भरी गर्मी अब अपना दायरा बढ़ा रही है। तापमान बढ़ने के साथ जब हवा में नमी भी ज्यादा होती है, तो शरीर का पसीना आसानी से नहीं सूखता। ऐसे में शरीर खुद को ठंडा नहीं कर पाता और गर्मी का असर कहीं ज्यादा खतरनाक हो सकता है।

सबसे चिंता की बात है कि इस तरह की गर्मी तटीय इलाकों से आगे बढ़कर देश के अंदरूनी हिस्सों तक

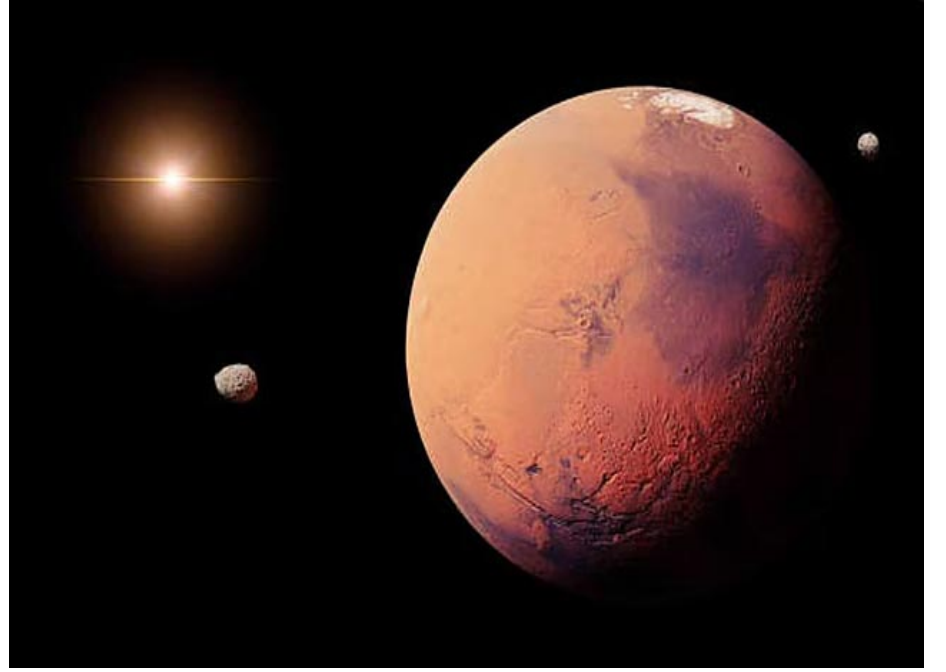
पहुंच रही है। हालात यह हैं कि 2021 तक इसके प्रभाव वाले क्षेत्र में करीब 10 फीसदी की बढ़ोतरी दर्ज की गई।

बता दें कि आईआईटी गांधीनगर से जुड़े वैज्ञानिकों ने भी अपने अध्ययन के खुलासा किया है कि वैश्विक तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी देश के आधे से अधिक हिस्से में मानसून की उमस और तपिश को गर्मियों की लू जितना ही जानलेवा बना देगी। इसका सबसे अधिक खतरा गंगा के मैदानी इलाकों, उत्तर-पश्चिमी भारत और पूर्वी तटीय क्षेत्रों में रहने वाले करीब 70 करोड़ लोगों पर मंडरा रहा है, जिनमें बड़ी संख्या खेतों, निर्माण स्थलों और अन्य श्रम-प्रधान कार्यों से जुड़े लोगों की है। रिसर्च से पता चला है कि उत्तर-पश्चिम भारत के मुकाबले दक्षिण भारत में तस्वीर कुछ अलग है। देश में दक्षिण भारत सबसे तेजी से सूखने वाला क्षेत्र बनकर उभरा है। पूर्वी तट के साथ ओडिशा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में सूखे के लगातार बनते हॉटस्पॉट देखे गए। कुछ वर्षों में इन क्षेत्रों के 40 फीसदी से अधिक भू-भाग पर सूखे की स्थिति दर्ज की गई। वैज्ञानिकों ने आगाह किया है कि यह स्थिति कृषि, पेयजल और ग्रामीण आजीविका पर दबाव बढ़ा सकती है। ऐसे में दक्षिण भारत के लिए बढ़ती गर्मी से निपटने के साथ-साथ पानी को बचाने और लंबे समय तक उपलब्ध रखने की रणनीति भी जरूरी होगी। पूर्वोत्तर भारत में जलवायु में आ रहे बदलाव की तस्वीर बेहद विचित्र है। यहां एक दिन में होने वाली बहुत भारी बारिश बढ़ने के साथ-साथ सूखे की अवधि भी अधिक बार दिखाई दे रही है। यानी एक ओर कम समय में बहुत अधिक बारिश हो रही है, तो दूसरी ओर बारिश के बीच सूखे की स्थितियां भी बढ़ रही हैं। अध्ययन के प्रमुख लेखक और नेशनल सेंटर फॉर मीडियम रेंज वेदर फोरकास्टिंग से जुड़े थोटा मोहन के मुताबिक, देश के अलग-अलग हिस्सों में बढ़ते तापमान का असर एक जैसा नहीं है। उत्तर-पश्चिम में गर्मी और सूखे का दबाव बढ़ रहा है, जबकि पूर्वोत्तर में भारी बारिश और सूखे के बीच उतार-चढ़ाव में बढ़ोतरी दर्ज की गई है।

मंगल ग्रह पर पानी की कहानी और भी जटिल निकली, वैज्ञानिकों को प्राचीन झील के मिले संकेत

न्यूयार्क। मंगल ग्रह पर जीवन की तलाश में जुटे नासा के पर्सिवियरेंस रोवर ने एक बार फिर वैज्ञानिकों को हैरान कर दिया है। सितंबर 2023 में रोवर जब मंगल के जेजेरो क्रेटर के अंदरूनी किनारे पर पहुंचा, तो वैज्ञानिकों को उम्मीद थी कि वहां उन्हें प्राचीन झील के तल में जमा हुई तलछटी चट्टानें मिलेंगी। लेकिन वहां जो मिला, वह उनकी उम्मीद से बिल्कुल अलग था। इस इलाके को मार्जिन यूनिट कहा जाता है। यह उस जगह के पास है, जहां अरबों साल पहले एक झील हुआ करती थी। पृथ्वी पर झीलों और समुद्रों के किनारे बनने वाली तलछटी चट्टानें अक्सर पुराने जीवन के निशान सुरक्षित रख सकती हैं। इसलिए वैज्ञानिक इस इलाके को लेकर खास तौर पर उत्साहित थे।

मंगल की कक्षा में घूम रहे यानों ने इस क्षेत्र में कार्बोनेट खनिजों के मजबूत संकेत भी देखे थे। पृथ्वी पर ऐसे खनिज अक्सर उथले पानी वाले झील या समुद्री वातावरण में बनते हैं। इससे वैज्ञानिकों को लगा था कि यहां मंगल की प्राचीन झील से जुड़ी चट्टानें मिल सकती हैं। यह शोध कम्युनिकेशन्स अर्थ एंड एनवायरनमेंट नामक पत्रिका में प्रकाशित किया गया है। पर्सिवियरेंस ने जब इलाके की जांच की तो तस्वीर बदल गई। रोवर को यहां मुख्य रूप से आग्नेय चट्टानें मिलीं। ऐसी चट्टानें तब बनती हैं, जब पिघला हुआ मैग्मा धीरे-धीरे ठंडा होकर ठोस हो जाता है। मार्जिन यूनिट के ऊंचे हिस्सों में रोवर को मोटे दानों और बड़े खनिज क्रिस्टलों वाली चट्टानें मिलीं। इनमें ओलिवीन नाम का खनिज काफी मात्रा में था। वैज्ञानिकों का मानना है कि ये चट्टानें मंगल की सतह के काफी नीचे मैग्मा के एक बड़े पिंड से बनी थीं। मैग्मा के धीरे-धीरे ठंडा होने से खनिजों के बड़े-बड़े क्रिस्टल बने। बाद में ऊपर की जमीन के लंबे समय तक घिसने के कारण ये चट्टानें सतह पर दिखाई देने लगीं। रोवर ने पाया कि ऊंचाई वाले हिस्सों में मौजूद ओलिवीन चट्टानों पर पानी का बहुत कम असर हुआ था। लेकिन नीचे की ओर आते-आते चट्टानों की स्थिति बदल गई थी। ओलिवीन के दाने टूटे हुए थे और उनके बीच सिलिका मौजूद थी। वैज्ञानिकों के अनुसार, पहली बार जब पानी इन चट्टानों तक पहुंचा, तो कार्बन डाइऑक्साइड से भरपूर भूमिगत पानी ने ओलिवीन के साथ प्रतिक्रिया की। इससे चट्टानों की दरारों में कार्बोनेट खनिज जमा हो गए। आज इन दरारों में भरे कार्बोनेट आसपास की नरम चट्टानों की तुलना में ज्यादा मजबूत हैं। इसलिए आसपास की चट्टान घिसने के बाद कार्बोनेट से भरी ये दरारें उभरी हुई दिखाई देती हैं। पानी के दूसरे दौर का संबंध जेजेरो क्रेटर की उस प्राचीन झील से हो सकता है, जो कभी इस इलाके में मौजूद थी। वैज्ञानिकों को कुछ चट्टानों में सिलिका भी मिली है। ओलिवीन के पानी के साथ प्रतिक्रिया करने पर कार्बोनेट बनने के साथ सिलिका भी पीछे रह सकती है। रोवर को ऐसी सिलिका उन चट्टानों में ज्यादा मिली, जो कभी पानी की सतह के नीचे रही होंगी। इससे संकेत मिलता है कि इलाके की चट्टानों पर प्राचीन झील के पानी का भी असर पड़ा हो सकता है। चट्टानों की कहानी का तीसरा अध्याय और भी दिलचस्प



है। मार्जिन यूनिट के पूर्वी हिस्से में रोवर को करीब 25 सेंटीमीटर मोटी खनिजों की नसें मिलीं। इनमें कैल्शियम सल्फेट और फ्लोराइट जैसे खनिज शामिल हैं। फ्लोराइट का मिलना वैज्ञानिकों के लिए खास महत्व रखता है। यह खनिज अक्सर उस स्थिति में बनता है, जब गर्म पानी ज्वालामुखीय चट्टानों के बीच से होकर गुजरता है। इसलिए माना जा रहा है कि प्राचीन मंगल पर इस इलाके में बाद के किसी समय गर्म भूमिगत पानी का प्रवाह हुआ था। पर्सिवियरेंस ने मार्जिन यूनिट में करीब 265 मीटर की ऊंचाई के अंतर वाले इलाके की जांच की और 185 से ज्यादा चट्टानी नमूनों का अध्ययन किया। इसके लिए रोवर के सुपरकैम उपकरण ने लेजर का इस्तेमाल किया। लेजर से चट्टान के छोटे हिस्से को गर्म कर बने प्लाज्मा की रोशनी का अध्ययन करके वैज्ञानिक उसकी रासायनिक संरचना का पता लगाते हैं। वैज्ञानिक अभी इन तीनों पानी से जुड़ी घटनाओं की सही उम्र नहीं बता सकते। हालांकि वे यह समझने में सफल रहे हैं कि घटनाएं किस क्रम में हुईं। यह खोज बताती है कि मंगल पर पानी की कहानी सिर्फ एक प्राचीन झील तक सीमित नहीं थी। भूमिगत पानी, झील का पानी और बाद में आया गर्म पानी – इन सभी ने अलग-अलग समय पर इन चट्टानों को बदला। वैज्ञानिकों के लिए ये चट्टानें मंगल के पुराने वातावरण की एक तरह की प्राकृतिक डायरी हैं। इनके अध्ययन से भविष्य में यह समझने में मदद मिल सकती है कि शुरुआती मंगल का मौसम कैसा था, वहां पानी कितने समय तक मौजूद रहा और क्या कभी वहां सूक्ष्म जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनी थीं।

द्योगपतियों और व्यापारियों ने राज्य सरकार के सहयोग के लिए माना आभार

भोपाल मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि महाकौशल और जबलपुर क्षेत्र के लिए समग्र विकास के लिए राज्य सरकार प्रतिबद्ध है। संस्कारधानी जबलपुर पर माँ नर्मदा का विशेष आशीर्वाद है, जो जल, थल और भू-गर्भ में प्राकृतिक संपदाओं से संपन्न है। हमारी सरकार ने महाकौशल क्षेत्र को तकनीकी विश्वविद्यालय और आधुनिक जू एंड रेस्क्यू सेंटर की सौगात दी है। राज्य सरकार जबलपुर सहित मंडला, डिंडौरी, बालाघाट, सिवनी, कटनी, पांडुणा, छिन्दवाड़ा और नरसिंहपुर में पर्यटन गतिविधियों को प्रोत्साहित कर रही है। लगभग 25 नई नीतियों के माध्यम से उद्यमियों को अनेक सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। इस क्षेत्र के उद्यमियों के सपनों को साकार करने के लिए पंख लगाने का कार्य सरकार करेगी।



मुख्यमंत्री डॉ. यादव मुख्यमंत्री निवास के संवाद सभाकक्ष में महाकौशल चेम्बर ऑफ कॉमर्स और जबलपुर व्यापारी संघ के प्रतिनिधियों से क्षेत्र के विकास को लेकर चर्चा कर रहे थे। मुख्यमंत्री डॉ. यादव व्यापारी का बंधुओं ने क्षेत्र के विकास के लिए जनहितैषी निर्णयों और प्रदेश में व्यापारी कल्याण बोर्ड गठित करने की पहल के लिए अभिनंदन किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि महाकौशल में उद्योग-व्यापार की अपार संभावनाएं विद्यमान हैं। जबलपुर में औद्योगिक क्षेत्र के प्रतिनिधियों के साथ जल्द ही विशेष संगोष्ठी आयोजित की जाएगी। इसका ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट-2027 के पहले

जबलपुर अंचल को पूरा लाभ मिल सकेगा। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि जिस प्रकार से ग्वालियर में टेलीकॉम मैनुफैक्चरिंग जोन (टीएमजेड) विकसित किया जा रहा है, उसी प्रकार से आईटी और माइनिंग सेक्टर में जबलपुर को भी अवसर मिलना चाहिए। प्रदेश में औद्योगिक गतिविधियों को गति प्रदान करने के लिए इंदौर-भोपाल-जबलपुर को विशेष इंडस्ट्रियल कॉरिडोर से जोड़ा जाएगा। यह एक ग्रीन फील्ड कॉरिडोर के रूप में विकसित होगा। मुख्यमंत्री डॉ. निवास में हुई चर्चा में उद्यमियों और व्यापारियों ने सेमीकंडक्टर क्षेत्र, मेडिकल यूनिवर्सिटी, माइनिंग सेक्टर, लॉजिस्टिक, होटल इंडस्ट्री, टूरिज्म, ऑटोमोबाइल, अधोसंरचना विकास, एजुकेशन, अंतर्राष्ट्रीय स्टेडियम सहित महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विकास की संभावनाएं बताते हुए अपने विचार व्यक्त किए। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने व्यापारी संगठनों के प्रतिनिधियों को बताया कि हमारी सरकार भोपाल और इंदौर को मेट्रोपोलिटन सिटी के रूप में विकसित कर रही है।

अवैध खनन के आरोपों पर एनजीटी सख्त

भोपाल अचारपुरा में कथित अवैध खनन ने सिर्फ पहाड़ियों और पर्यावरण को लेकर सवाल नहीं खड़े किए हैं, बल्कि हजारों लोगों के पानी के भविष्य पर भी चिंता बढ़ा दी है। मनीखेड़ी कोट पंचायत क्षेत्र में स्थित तालाब पर अचारपुरा, मनीखेड़ी, राताताल और करदई समेत आसपास के 8,000 से अधिक लोग निर्भर हैं। आवेदन में आरोप लगाया गया है कि मानसून से पहले तालाब से लगी पहाड़ियों और वन क्षेत्र में दो से तीन मशीनों से दिन-रात खुदाई की गई और तालाब की सीमा को भी नुकसान पहुंचाया गया। इसके चलते इस वर्ष पानी पुलिया तक नहीं पहुंच पाया। तालाब आसपास के क्षेत्र से ऊंचाई पर स्थित है और करीब 10 से 12 किलोमीटर के दायरे में भूजल पुनर्भरण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका बताई गई है। ऐसे में तालाब के जल्द सूखने से गर्मियों में भूजल स्तर गिरने और पेयजल संकट बढ़ने की आशंका जताई गई है। इन आरोपों की जांच के लिए एनजीटी ने तीन सदस्यीय संयुक्त समिति गठित की है, जिसे मौके का निरीक्षण कर छह सप्ताह में रिपोर्ट देनी होगी। समिति तालाब का क्षेत्रफल, राजस्व रिकॉर्ड और वेटलैंड की स्थिति भी जांचेगी।



भोपाल के अचारपुरा औद्योगिक क्षेत्र में तालाब और आसपास की पहाड़ियों में कथित अवैध खनन के मामले में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने सख्त रुख अपनाया है। आरोप है कि इस क्षेत्र में पर्यावरण सम्बन्धी नियमों को ताक पर रख अवैध खनन किया गया है। ऐसे में 24 सितंबर 2026 को दिए अपने आदेश में ट्रिब्यूनल ने तीन सदस्यीय संयुक्त समिति गठित कर मौके की जांच करने और छह सप्ताह के भीतर रिपोर्ट पेश करने के निर्देश दिए हैं। समिति यह भी जांच करेगी कि संबंधित तालाब का क्षेत्रफल कितना है, राजस्व रिकॉर्ड में उसकी क्या स्थिति दर्ज है और क्या इस क्षेत्र को आर्द्रभूमि (वेटलैंड) के रूप में नोटिफाई किया गया है। यदि जांच में नियमों का उल्लंघन पाया जाता है तो उसके सुधार के लिए क्या कदम उठाए जा सकते हैं, समिति से उसकी भी जानकारी देने को कहा गया है। यह मामला सिर्फ पहाड़ियों पर खनन तक सीमित नहीं है। स्थानीय लोगों के मुताबिक, तालाब के सूखने के साथ आने वाली गर्मियों में आसपास के इलाकों में पानी का संकट गहरा सकता है। अचारपुरा, मनीखेड़ी, राताताल और करदई समेत आसपास के क्षेत्रों की 8,000 से अधिक लोग इस तालाब के पानी पर सीधे तौर पर निर्भर हैं। एनजीटी के सामने दायर आवेदन में कहा गया है कि बारिश खत्म होने और गर्मी शुरू होने के बाद तालाब के जल्द सूखने की आशंका है। मनीखेड़ी कोट पंचायत क्षेत्र में स्थित इस तालाब

का दायरा एक किलोमीटर से ज्यादा है। आवेदन के मुताबिक, तालाब की बाउंड्री क्षतिग्रस्त होने के कारण इस वर्ष पानी पुलिया तक भी नहीं पहुंच पाया। तालाब आसपास के क्षेत्र से ऊंचाई पर स्थित है, इसलिए इसका पानी करीब 10 से 12 किलोमीटर के दायरे में भूजल के पुनर्भरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे में तालाब के लगभग खाली हो जाने से गर्मियों में भूजल स्तर तेजी से नीचे जाने की आशंका जताई गई है। इसका सीधा असर उन लोगों पर पड़ सकता है, जिनकी पेयजल जरूरतें आसपास के भूजल स्रोतों पर निर्भर हैं। आवेदन में आरोप लगाया गया है कि मानसून से पहले करीब चार महीने तक क्षेत्र की पहाड़ियों में लगातार खुदाई की गई। स्थानीय लोगों के अनुसार, कई बार एक साथ दो और कभी-कभी तीन मशीनों से दिन-रात खुदाई होती रही। लोगों का कहना है कि तालाब से लगी पहाड़ी और वन क्षेत्र में मई और जून के दौरान बड़े पैमाने पर खनन किया गया। शुरुआत में कुछ लोगों को लगा कि शायद तालाब को गहरा करने और उसकी जलधारण क्षमता बढ़ाने के लिए मिट्टी और चट्टान हटाई जा रही है। लेकिन बाद में ग्रामीणों ने तालाब की सीमा और मेड़ को नुकसान पहुंचाए जाने पर सवाल उठाए। उनका

आरोप है कि सीमा को जानबूझकर कमजोर किया गया, जिससे भविष्य में तालाब और आसपास के क्षेत्र में खनन करना आसान हो सके। हालांकि इन आरोपों की पुष्टि होना अभी बाकी है। इसी की जांच के लिए एनजीटी ने संयुक्त समिति को मौके पर जाकर तथ्य जुटाने और रिपोर्ट देने को कहा है। एनजीटी ने समिति को तालाब के वास्तविक क्षेत्रफल की जांच करने के साथ राजस्व रिकॉर्ड को भी खंगालने के निर्देश दिए हैं। समिति यह भी देखेगी कि संबंधित क्षेत्र को वेटलैंड यानी आर्द्रभूमि के रूप में अधिसूचित किया गया है या नहीं। समिति से पर्यावरण को नुकसान की स्थिति में सुधार के लिए जरूरी उपाय सुझाने और की गई कार्रवाई पर रिपोर्ट भी पेश करने का निर्देश दिया गया है। इसके साथ ही एनजीटी ने मध्य प्रदेश सरकार की ओर से भोपाल के जिलाधिकारी, मध्य प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भोपाल नगर निगम, भोपाल के खनन अधिकारी, केंद्रीय भूजल बोर्ड के उत्तर मध्य क्षेत्र, मनीखेड़ी कोट पंचायत के सचिव और तालाब क्षेत्र में खनन करने वाले व्यक्ति/ऑपरेटर को भी अपना जवाब दाखिल करने के निर्देश दिए हैं। देखा जाए तो तालाब में घटता पानी और क्षतिग्रस्त होती उसकी सीमा केवल एक जलस्रोत के खत्म होने का सवाल नहीं है। इसके साथ आसपास के भूजल, कृषि और हजारों लोगों की रोजमर्रा की पानी की जरूरतें भी जुड़ी हैं। ऐसे में अब एनजीटी द्वारा गठित समिति की जांच से यह स्पष्ट होगा कि तालाब और पहाड़ियों में वास्तव में क्या हुआ और पर्यावरणीय नुकसान की भरपाई के लिए किन कदमों की जरूरत है।

कांगो में बढ़ा इबोला का खतरा, दो नए क्षेत्रों समेत 63 इलाके प्रभावित

अफ्रीकी देश डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो (डीआर कांगो) में इबोला का प्रकोप लगातार फैल रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, बुंदिबुग्यो वायरस से फैल रही बीमारी अब दो और स्वास्थ्य क्षेत्रों तक पहुंच गई है। इनमें सुद उबांगी प्रांत का बुलु और हाउत-उएले प्रांत का दुंगु शामिल है। दुंगु क्षेत्र दक्षिण सूडान की सीमा के पास है। नए इलाकों में संक्रमण मिलने के बाद देश में प्रभावित स्वास्थ्य क्षेत्रों की संख्या बढ़कर 63 हो गई है। ये क्षेत्र सात प्रांतों में फैले हुए हैं।

डब्ल्यूएचओ के मुताबिक, 23 सितंबर 2026 तक डीआर कांगो में बुंदिबुग्यो वायरस से इबोला के 7,890 पुष्ट मामले सामने आए हैं। इनमें 3,799 लोगों की मौत हो चुकी है। इस बीमारी से 1,966 मरीज ठीक भी हुए हैं। हालांकि अलग-अलग इलाकों में संक्रमण की स्थिति एक जैसी नहीं है। कुछ क्षेत्रों में मामले कम हो रहे हैं, जबकि कुछ जगहों पर संक्रमण अभी भी तेजी से फैल रहा है। इटुरी प्रांत इस बीमारी से सबसे ज्यादा प्रभावित है। यहां अब तक 6,032 पुष्ट मामले सामने आए हैं। इसके बाद नॉर्थ किवु में 1,480 मामले दर्ज किए गए हैं। डब्ल्यूएचओ के मुताबिक, इटुरी में संक्रमण का स्तर अगस्त के मध्य की तुलना में धीरे-धीरे कम हुआ है, लेकिन वहां अभी भी बीमारी का खतरा बना हुआ है। प्रेस विज्ञप्ति में डब्ल्यूएचओ के महानिदेशक टेड्रोस अधानोम गेब्रेयेसस के हवाले से कहा गया है कि कांगो में जारी संघर्ष और लोगों के एक जगह से दूसरी जगह जाने के कारण इबोला पर काबू पाना मुश्किल हो रहा है। कई प्रभावित इलाकों तक स्वास्थ्यकर्मियों की पहुंच आसान नहीं है। इबोला के खिलाफ लड़ाई में संक्रमित लोगों की पहचान के साथ-साथ उन लोगों का पता लगाना भी जरूरी होता है, जो किसी मरीज के संपर्क में आए हों। इसे कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग कहा जाता है। लेकिन हिंसा, असुरक्षा और लोगों के विस्थापन के कारण कुछ लोगों तक पहुंचना मुश्किल हो रहा है। इससे संभावित संक्रमित लोगों की निगरानी प्रभावित हो सकती है। संघर्ष के कारण बड़ी संख्या में लोग अपना घर छोड़कर दूसरी जगहों पर जा रहे हैं। कई बार विस्थापित लोगों को भीड़भाड़ वाली जगहों पर रहना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में बीमारी के फैलने का खतरा बढ़ सकता है। डब्ल्यूएचओ के अनुसार, प्रभावित इलाकों में निगरानी, मरीजों की पहचान, संपर्क में आए लोगों की निगरानी और समय पर इलाज पहुंचाने में सुरक्षा संबंधी समस्याएं बाधा बन रही हैं। इसके बावजूद स्वास्थ्यकर्मी संक्रमण को रोकने के लिए लगातार काम कर रहे हैं। बुंदिबुग्यो वायरस के मामले में एक बड़ी चुनौती प्रभावी वैक्सीन और इलाज की उपलब्धता है। डब्ल्यूएचओ ने बताया है कि बुंदिबुग्यो वायरस बीमारी से बचाव के लिए उपलब्ध इबोला वैक्सीन की प्रभावशीलता अभी पूरी तरह साबित नहीं हुई है। इसलिए उसका इस्तेमाल फिलहाल शोध प्रक्रिया के तहत किया जा रहा है। साथ ही बीमारी के इलाज के लिए क्लिनिकल ट्रायल भी चल रहे हैं। डब्ल्यूएचओ के अनुसार, स्वास्थ्यकर्मियों और अग्रिम पंक्ति में काम करने वाले लोगों का टीकाकरण शुरू किया जा चुका है। इलाज और वैक्सीन से जुड़े परीक्षणों को भी आगे बढ़ाया जा रहा है। टेड्रोस ने कहा कि मौजूदा इबोला प्रकोप को वैश्विक महामारी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।